रसस्वरूप

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।

लोक में रति आदि स्थायीभावों के जो कारण, कार्य और सहकारी हैं, वे यदि नाट्य और काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो वे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं और उन विभावादि से व्यक्त वह स्थायीभाव रस कहा गया है।

वस्तुतः लोक में रति (प्रेम) के जो कारण, कार्य और सहकारी कहे गये हैं, काव्य और नाटक में वे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं। अर्थात् रति आदि की उत्पत्ति के कारण विभाव नाम से अभिहित किये जाते हैं, कार्य अनुभाव कहलाते हैं और सहकारी व्यभिचारीभाव कहे जाते हैं। जैसे लोक में रति (प्रेम) के कारण नायक-नायिका हैं अर्थात् लोक-जीवन में नायक-नायिका को देखकर प्रेम अंकुरित होता है, इसलिए वे प्रेम (रति) आदि की उत्पत्ति के कारण कहे गये हैं। काव्य और नाट्य में ये विभाव कहलाते हैं। रत्यादि के कारणभूत ये विभाव दो प्रकार के होते हैं- एक आलम्बन रूप और दूसरा उद्दीपन रूप। नायक-नायिका आदि एक दूसरे के आलम्बन रूप विभाव हैं; क्योंकि नायक को देखकर नायिका के मन में और नायिका को देखकर नायक के मन में प्रेम अंकुरित होता है, उत्पन्न होता है, इसलिए ये दोनों नायक-नायिका आलम्बन विभाव हैं और ये प्रेम (रति) की उत्पत्ति के कारण हैं। नायक-नायिका में अंकुरित प्रेम (रति) का उद्बोधन करने वाले कारण चाँदनी-रात, उद्यान, एकान्त-स्थान आदि उद्दीपन विभाव कहलाते हैं, क्योंकि ये चाँदनी, उद्यानादि नायक-नायिकों में अंकुरित प्रेम (रति) जो उद्दीप्त करते हैं।

इसलिए रति को उद्दीप्त करने के कारण ये भी रत्युद्बोधन के कारण हैं। इस प्रकार रत्यादि को अंकुरित तथा उद्दीपित करने वाले साधन विभाव है।

लोक-जीवन में नायक-नायिका के हृदय में प्रेम (रति) के अंकुरित एवं उद्दीप्त होने पर कटाक्ष, भुजक्षेप आदि जो भाव (चेष्टादि) प्रदर्शित किये जाते हैं वे ही काव्य और नाट्य में अनुभाव कहे जाते हैं। अनुभाव वाचिक, मानसिक और शारीरिक व्यापार हैं। ये अनुभाव नायक-नायिका के हृदय में उद्बुद्ध प्रेम (रति) का प्रकाशन करते हैं। ये विभाव के बाद होते हैं, इसलिए इन्हें अनुभाव कहते हैं। इसी प्रकार लोक में रत्यादि भावों के पोषण अथवा अभिव्यंजन में जो सहायक होते हैं, उन्हें सहकारी कहते हैं। ये सहकारी जब नाटक और काव्य में रत्यादि भावों को अभिव्यक्त कराने में सहायक होते हैं तब संचारीभाव या व्यभिचारीभाव कहलाते हैं। ये व्यभिचारीभाव रसों में विविध-रूप में संचरण (विचरण) करते हैं। इन्हीं विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के द्वारा अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव 'रस' कहलाता है।

आचार्य मम्मट ने विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त रत्यादि 'स्थायीभाव' को 'रस' कहा है । स्थायीभाव क्या है? भाव मानव-हृदय में विद्यमान मानस-संस्कार या वासना है जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में चित्तवृत्ति के रूप में सुषुप्त अवस्था में विद्यमान रहते हैं और अनुकूल अवसर पाते ही जागृत हो उठते हैं। ये प्रयुक्त संस्कार रूप भाव मानव-हृदय में निरन्तर स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। इसीलिए इन्हें स्थायीभाव कहते हैं। ये स्थायीभाव संख्या में आठ होते हैं- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय-

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः।।

इनके अतिरिक्त 'निर्वेद' नामक नवाँ स्थायीभाव भी होता है-

'निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः'

ये रत्यादि स्थायीभाव विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस कहलाते हैं। किसी भाव को उत्पन्न करने के लिए कोई न कोई कारण होता है। वह कारण विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार के होते हैं आलम्बन और उद्दीपन। नायक-नायिका आलम्बन विभाव है। एकान्त-स्थान, उद्यान, चाँदनी आदि उद्दीपन विभाव हैं, कटाक्ष, भुजक्षेप आदि आङ्गिक घेण्टाएँ अनुभाव हैं; निर्वेदादि संचारीभाव हैं जिन कारणों से अनुभाव का स्वरूप बनता है वे संचारीभाव कहलाते हैं। संचरणशील होने से इन्हें संचारीभाव कहा जाता है।

इन्हीं विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव रस कहलाता है। जैसे नायिका को देखकर नायक के हृदय में सुषुप्तावस्था में विद्यमान भाव अंकुरित हो उठता है और उद्यान, चाँदनी रात तथा एकान्त स्थान में वह भाव उद्दीप्त हो जाता है। तब रत्यादि भाव के उद्बोधन के पश्चात् कटाक्ष, भुजक्षेप आदि अनुभावन व्यापार रत्यादिभावों को प्रकाशित कर देता है। तब संचारीभाव के द्वारा उसका अभिव्यंजन होता है, तब वह रस रूप में परिणत हो जाता है। यही रसानुभूति की प्रक्रिया है।

यहाँ कतिपय बिन्दुओं को संक्षेप में उधृत किया जा रहा है-

क) 'रस' का अनुभूति का आन्तरिक कारण स्थायीभाव है। अतः इसे रसानुभूति का अन्तरंग कारण भी माना जाता है। मन के भीतर स्थिर (स्थायी) रूप से रहने वाले सुप्त संस्कार को स्थायीभाव कहते हैं।

ख) रसानुभूति के कारणों को 'विभाव' कहते हैं। ये विभाव दो स्वरूपों में विभक्त हैं-आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभाव। आलम्बन विभाव उसे कहते है कि जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है।'आलम्बन' और 'उद्दीपन' रसनिष्पत्ति के बाह्य कारण हैं।

ग) रत्यादि स्थायीभाव को जो बाहर प्रकट करता है, उसे 'रति' आदि स्थायीभाव का 'कार्य' कहते हैं, और उसे ही काव्य और नाटक में अनुभाव कहते हैं। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने कहा है-

उद्बुद्धं कारणैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।

आन्तरिक रसानुभूति की बाह्य अभिव्यञ्जना के साधन 'अनुभाव' हुआ करते हैं और उसमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता रहती है।

घ) उद्दीपन कारणों (विभावों) से उद्बुद्ध हुए स्थायी भावों को पुष्ट करने में तथा उनके उपचय में जो सहकारी होते हैं, उन्हें व्यभिचारीभाव कहते हैं।

ङ) विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव को लोक व्यवहार में 'कारण', 'कार्य' तथा 'सहकारी' कहते हैं।